

चार्वाक के सिद्धान्त

अदृष्ट एवं ईश्वर का निषेध

यहाँ यदि आस्तिक दर्शन यह कहे कि परलोक स्वर्ग आदि को सिद्ध करने वाला व्यापार अदृष्ट या धर्म एवं अधर्म है जिससे स्वर्ग की सिद्धि होती है तो यह चार्वाक को स्वीकार्य नहीं है। अलौकिक अदृष्ट का खण्डन करते हुए चार्वाक स्वर्ग आदि परलोक के साधन में अदृष्ट की भूमिका को निरस्त करता है तथा इस प्रकार आस्तिक दर्शन के मूल पर ही कुठाराघात कर देता है। यही कारण है कि अदृष्ट के आधार पर सिद्ध होने वाले स्वर्ग आदि परलोक के निरसन के साथ ही इस अदृष्ट के नियामक या व्यवस्थापक के रूप में ईश्वर का भी निरास चार्वाक मत में अनायास ही हो जाता है।

जीव एवं चैतन्य की अवधारणा

चार्वाक मत में कोई जीव शरीर से भिन्न नहीं है। शरीर ही जीव या आत्मा है। फलतः शरीर का विनाश जब मृत्यु के उपरान्त दाह संस्कार होने के बाद हो जाता है तब जीव या जीवात्मा भी विनष्ट हो जाता है। शरीर में जो चार या पाँच महाभूतों का समवधान है, यह समवधान ही चैतन्य का कारण है। यह जीव मृत्यु के अनन्तर परलोक जाता है यह मान्यता भी, शरीर को ही चेतन या आत्मा स्वीकार करने से निराधार ही सिद्ध होती है। शास्त्रों में परिभाषित मोक्ष रूप परम पुरुषार्थ भी चार्वाक नहीं स्वीकार करता है। चेतन शरीर का नाश ही इस मत में मोक्ष है। धर्म एवं अधर्म के न होने से चार्वाक सिद्धान्त में धर्म-अधर्म या पुण्य-पाप को, कोई अदृश्य स्वर्ग एवं नरक आदि फल भी नहीं है यह अनायास ही सिद्ध हो जाता है।

शरीरात्मवाद में स्मरण का उपपादन

चार्वाक मत में शरीर को ही आत्मा मान लेने पर बाल्यावस्था में अनुभूत कन्दुक क्रीड़ा आदि का वृद्धावस्था या युवावस्था में स्मरण कैसे होता है? यह एक ज्वलन्त प्रश्न सहज ही उठ खड़ा होता है। यहाँ यह नहीं कहा जा सकता कि बाल्यावस्था का शरीर, वृद्धावस्था का शरीर एवं युवावस्था का शरीर एक ही है। यदि तीनों अवस्थाओं का शरीर एक ही होता तो इन तीनों अवस्थाओं के शरीरों में इतना बड़ा अन्तर नहीं होता। अन्तर से यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि शरीर के अवयव जो मांस पिण्ड आदि हैं इनमें वृद्धि एवं ह्रास होता है। तथा इन ह्रास एवं वृद्धि के कारण ही बाल्यावस्था के शरीर का नाश एवं युवावस्था के शरीर की उत्पत्ति होती है यह भी सिद्ध होता है। यदि यह कहें कि युवावस्था के शरीर में यह वही शरीर है, यह व्यवहार होने के कारण शरीर को एक मान कर उपर्युक्त स्मरण को उत्पन्न किया जा सकता है, तो यह कथन भी युक्तियुक्त नहीं हो सकता। क्योंकि यह वही शरीर है यह प्रत्यभिज्ञान तो स्वरूप एवं आकृति की समानता के कारण होता है। फलतः दोनों अवस्थाओं के शरीरों को अभिन्न नहीं माना जा सकता है। ऐसी स्थिति में पूर्व दर्शित बाल्य-काल के स्मरण को सम्पन्न करने के लिए चार्वाक बाल्यकाल के शरीर में उत्पन्न क्रीड़ा से जन्य संस्कार दूसरे युवा-काल के शरीर में अपने जैसे ही नये संस्कार पैदा कर देते हैं। इसी प्रकार युवावस्था के शरीर में विद्यमान संस्कार वृद्धावस्था के शरीर में अपने जैसे संस्कार उत्पन्न कर देते हैं। एतावता इन बाल्यावस्था के संस्कारों के उद्बोधन से चार्वाक मत में स्मरण बिना किसी बाधा के हो जाता है। अन्ततः चार्वाक दर्शन में शरीर ही आत्मा है यह सहज ही सिद्ध होता है।

यदि शरीर ही आत्मा है तो चार्वाक से यह पूछा जा सकता है कि 'मम शरीरम्' यह मेरा शरीर है, ऐसा लोकसिद्ध जो व्यवहार है वह कैसे उत्पन्न होगा? इस व्यवहार से तो यह प्रतीत हो रहा है कि शरीर अलग है एवं शरीर का स्वामी कोई और है, जो शरीर से भिन्न आत्मा ही है। इस प्रश्न का समाधान करते हुए चार्वाक कहता है कि जैसे दानव विशेष के सिर को ही राहू कहा गया है, फिर भी जन-सामान्य 'राहू का सिर' यह व्यवहार बड़े ही सहज रूप में करता है, उसी प्रकार शरीर के ही आत्मा होने पर भी 'मेरा शरीर' यह लोकसिद्ध व्यवहार उत्पन्न हो जायेगा। चार्वाकों में कुछ चार्वाक इन्द्रियों को ही आत्मा मानने पर इन्द्रिय के नष्ट होने पर स्मरण की आपत्ति का निरास नहीं हो पाता है। किन्हीं चार्वाकों ने प्राण एवं मन को भी आत्मा के रूप में माना है। शरीर ही आत्मा है यह सिद्ध करने के लिए चार्वाक इस वेद के सन्दर्भ को भी आस्तिकों के सन्तोष के लिए प्रस्तुत करता है। इस वेद वचन का तात्पर्य है कि 'विज्ञान से युक्त आत्मा इन भूतों से उत्पन्न हो कर अन्त में इन भूतों में ही विलीन हो जाता है। यह भूतों में शरीर स्वरूप आत्मा का विलय ही मृत्यु है।'